IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 23, Issue 1, Ser. 1 (January. 2018) 100-102
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

साहित्यकारों की लेखनी द्वारा भारतीय सामाजिक परिवेश का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 महेश चन्द्र चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
नारायण कॉलेज,शिकोहाबाद

सारांश
समाज में व्यक्ति या परिवार ही नहीं, समुदाय भी रहते हैं। एक ही देश में अनेक समुदाय पाये जाते हैं और इन समुदायों में कहीं धर्म के आधार पर, कहीं भाषा के आधार पर, कहीं रिश्ते के आधार पर, कहीं जाति के आधार पर झगड़े होते रहते हैं। किस प्रकार इन झगड़ों को मिटाकर आपस में सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं, ये समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा ही सुगमता पूर्वक पता लग सकता है। हमारा समाज निरन्तर परम्परागत एवं नवीन समस्याओं से जूझता रहता है। समाज कई वर्गों में विभाजित रहता है। कहीं धनी वर्ग हैं, कहीं पुरुषों के अधिकार अधिक हैं तो कहीं स्त्रियों के अधिकारों का हनन हो रहा है। चोरी, डाका, हत्या, वेश्यावृत्ति, मदिरापान, ऊँच–नीच आदि ऐसी सामाजिक समस्यायें हैं जो केवल कानून से नहीं सुलझायी जा सकतीं। इन सब समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता होती है और यह काम समाजशास्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य शास्त्र नहीं कर सकता।

परिचय

आधुनिक युग में सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने के लिये समाजशास्त्रीय अध्ययन की बहुत ही आवश्यकता है, क्योंकि आधुनिक युग में दिन–प्रतिदिन सामाजिक समस्यायें जटिलतम होती जा रही हैं। हमारे समाज में सभी क्षेत्रों में अनेक समस्यायें हैं, जैसे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आदि। इन सभी समस्याओं का अध्ययन विभिन्न शास्त्र करते हैं, किन्तु समाजशास्त्र ही एक ऐसा शास्त्र है जिसमें समाज के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत प्रायः समाज की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का अध्ययन होता है।

राजनीतिक स्थिति में सरकार की शासन प्रणाली, आन्तरिक तथा बाह्य नीति, नागरिकों की रक्षा, सीमा सुरक्षा, यातायात के साधन आदि विषय आते हैं। सामाजिक स्थिति में व्यक्ति की समस्यायें, परिवार, जाति, वर्ग, संस्था, विवाह, प्रेम आदि विषय सम्मिलित हैं। संस्कृति का सम्बन्ध धर्म, ज्ञान, शिक्षा, प्रथा, परम्परा और विश्वास से है तथा आर्थिक चेतना से सम्बन्धित पूंजी, लघु एवं कुटीर उद्योग, कारखाने, कृषि इत्यादि विषय विवेचनीय होते हैं।

जब से मनुष्य का जन्म हुआ और मनुष्य ने समाज को बनाया, तभी से समाज भिन्न–भिन्न समस्याओं से जूझता आ रहा है। इन समस्याओं का प्रस्तुतीकरण और निराकरण समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत किया जाता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन–क्षेत्र को दो विचारधाराओं में बाँटा गया है। (1) एक विचारधारा यह है कि समाजशास्त्र एक विशेष विज्ञान है। इस प्रकार समाजशास्त्र में केवल कुछ विशेष प्रकार के सम्बन्धों का ही अध्ययन किया जाना चाहिए। (2) दूसरी विचारधारा के अनुसार– समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत सभी सामान्य सम्बन्धों का अध्ययन होना चाहिए। वास्तव में यदि देखा जाय तो समाजशास्त्रीय अध्ययन से अभिप्राय सामूहिक जीवन और सामाजिक विरासत से सम्बन्धित समस्त सामान्य विषयों का अध्ययन करना है और दूसरी ओर मनुष्य के व्यक्तित्व व उसके सामाजिक विकास की भी व्याख्या करना है। समाज के किसी भी अध्ययन में 'व्यक्ति' की अवहेलना नहीं की जा सकती। व्यक्ति ही क्रिया और अन्तःक्रिया करता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक सम्बन्ध पनपते हैं, जिससे कि अन्तिम रूप में समाज का अस्तित्व सम्भव होता है। यदि किसी व्यक्ति का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाय तो व्यक्ति विशेष पर ध्यान केन्द्रित करने की जगह अनेक व्यक्तियों के द्वारा किये जाने वाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जायेगा। अतः कहा जा सकता है कि व्यक्तियों के द्वारा किये जाने वाली अन्तःक्रियायें समाजशास्त्रीय अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन समाज की विविधता, उसके विविध पक्षों को लक्षित करता है तथा उसकी संरचना एवं संरचना को निर्मित करने वाली इकाइयों की तथ्यपरक व्याख्या राग द्वेष से रहित होकर करता है। किसी पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति आदि के आधार पर नहीं। समाजशास्त्री यह बात स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति और समाज दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। किसी वर्ग विशेष की उपेक्षा या वर्ग विशेष के प्रति लगाव इस सन्दर्भ में कोई महत्व नहीं रखता। भ्रष्ट या कुत्सित या पूर्वाग्रही दृष्टि से समाजशास्त्र को कोई सरोकार नहीं है। वह परिवर्तन की निरन्तर प्रक्रिया को समझने और विभिन्न संस्थाओं पर उनके प्रभावों को आँकने का प्रयास करता है और उसकी दृष्टि में सर्वहारा, सर्वहारा–अभिजात, अभिजातपूर्ण वर्ग या अन्य कोई श्रेणी, वर्ग और उनकी अन्तःक्रियायें समान महत्व रखती हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन में मुख्यतः समाज–दर्शन की प्रवृत्ति होती है। इन अध्ययनों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को सर्वोपरि माना है और आधुनिक सन्दर्भ में उसका प्रतिस्थापन करने का प्रयत्न किया है। इसमें परम्परागत संस्थाओं के विश्लेषण की प्रवृत्ति बहुत अधिक रही है। इसके अन्तर्गत जाति, संयुक्त परिवार, विवाह, ग्रामीण समुदाय आदि का अध्ययन किया जाताहै।

हमारे देश में सामाजिक परिवेश में समाजशास्त्रीय अध्ययन का अतीत मनु की 'मनुस्मृति', कौटिल्य की रचना 'अर्थशास्त्र' तथा वेदों, उपनिशदों, धर्मसूत्रों, रामायण, गीता, पुराणों और महाभारत में दृष्टिगत होता है। इन महत्ववपूर्ण कृतियों में परिवार का स्वरूप, उसके कार्यों, वर्णो अथवा आश्रमों के रूप में सामाजिक व्यवस्था, कर्म का सिद्धान्त, गाँव, पंचायत, पुरुषार्थ एवं धर्म तथा उसकी समाज में भूमिका आदि विषयों का वर्णन किया गया है, जो आज के समाजशास्त्र के आधार तथा अध्ययन सामग्री के रूप में स्थान पाये हुये हैं। इन मनीशियों ने बहुत ही सर्वांग और शाश्वत व्याख्या सामाजिक व्यवस्था की प्रस्तुत की है, जो कि आज भी आदर्श व्यवस्था के रूप में मानी जाती है। भारतीय समाज के इतिहास में आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व एक ऐसी सामाजिक योजना का निर्माण किया गया था, जिसके द्वारा व्यक्ति, परिवार और परीक्षणों के पश्चात् उस समय यह महसूस कर लिया गया था कि जीवन के महान् लक्ष्यों और कर्तव्यों का ज्ञान कराये बिना सामाजिक जीवन को संगठित नहीं बनाया जा सकता, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सामाजिक जीवन को दो प्रमुख आधारों पर संगठित किया गया। 1. दार्शनिक आधार, 2. संगठनात्मक आधार।

दार्शनिक आधारों का सम्बन्ध उन सिद्धान्तों से था जो व्यक्ति को इसके कर्तव्यों और जीवन के लक्ष्यों से परिचित करा सकें, जब कि संगठनात्मक आधार एक प्रकार की सामाजिक योजनायें हैं, जिनके अन्तर्गत व्यक्ति और समूह के जीवन को अनेक इकाइयों में विभाजित करके उनकी कुशलता का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयास किया गया है। दार्शनिक आधार के अन्तर्गत पुरुषार्थ, कर्म, पुनर्जन्म, ऋण तथा यज्ञ एवं संकट आते हैं, जबकि संगठनात्मक आधार के अन्तर्गत चार आधार अधिक महत्वपूर्ण हैं :–

1. वर्ण व्यवस्था
2. आश्रम व्यवस्था
3. जाति–प्रथा, तथा
4. संयुक्त परिवार।

परिवर्तन समाज का नियम है। जब एक लम्बे समय तक कोई विशेष सामाजिक व्यवस्था व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करती रहती है, तो धीरे–धीरे व्यक्ति उसमें परिवर्तन करने का प्रयास करने लगते हैं। समय बीतने के साथ व्यक्तियों की आवश्यकयताओं और अनुभवों में भी परिवर्तन होता है। इसके फलस्वरूप व्यवहार के नियम विकसित होते हैं। भारतीय समाज में आज भी औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा और नये सामाजिक मूल्यों के कारण समाजशास्त्रीय अध्ययन के परम्परागत आधारों में तीव्र परिवर्तन हुये हैं। आज पुरुषार्थ की धारणा दुर्बल होती जा रही है। कर्म और पुनर्जन्म को संशोधित रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। संस्कारों को जीवन के लिये आवश्यक नहीं समझा जाता, वर्ण व्यवस्था का स्थान जाति प्रथा ने ले लिया है, आश्रम व्यवस्था का समाज में कोई अस्तित्व नहीं रहा और संयुक्त परिवारों का तेजी से विघटन हो रहा है। इनके स्थान पर समाज का निर्माण भी नये आधारों पर हुआ। यह आधार धर्म निरपेक्षता अथवा लौकिकता, वर्ग व्यवस्था, आधुनिकीकरण, संस्कृतीकरण एवं समानता है।

भारतीय समाज आज परम्परा के घेरे से बाहर निकलकर आधुनिकता का परिवेश ग्रहण कर रहा है। वह परितर्वन उन सभी आधारों का परिणाम है जो आधुनिक समाज में विकसित हुये हैं। मैकी के अनुसार–''साधारण तौर पर सामाजिक क्रिया, सामाजिक ढाँचा, सामाजिक प्रक्रियायें, सामाजिक संस्थायें और समाज समाजशास्त्र की विषय–वस्तु के

आधार दिखायी देते हैं, लेकिन यदि ध्यान से देखा जाये तब स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी तथ्यों और प्रक्रियाओं का निर्माण सामाजिक सम्बन्धों के द्वारा ही होता है। इस प्रकार हम चाहे स्थिर सामाजिक तथ्यों का अध्ययन कर रहे हों अथवा परिवर्तनशील तथ्यों का, हमारा वास्तविक उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों के एक विशेष स्वरूप का ही अध्ययन करना होता है।''[1]

वास्तविकता यह है कि बाहरी रूप से कोई सम्बन्ध चाहे आर्थिक हो अथवा धार्मिक, राजनीतिक हो अथवा सांस्कृतिक, लेकिन आन्तरिक रूप से सभी सम्बन्धों का आधार एक ही है,जिसे हम समाजशास्त्रीय आधार कहते हैं। व्यक्ति पहले एक सामाजिक प्राणी है और इसके बाद वह आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक प्राणी बन सकता है। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक सम्बन्धों के बिना हम किसी भी प्रकार सामाजिक जीवन का निर्माण नहीं कर सकते। इसी भावना से मैकाइवर ने समाज को 'सामाजिक सम्बन्धों का जाल' कहा है। दुर्खीम, गिन्सवर्ग और सारोकिन ने समाजशास्त्र की विषयवस्तु में जिन समस्याओं को सम्मिलित किया है, वे सभी समस्यायें सामाजिक सम्बन्धों के ही विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समाजशास्त्रीय अध्ययन का वास्तविक आधार सामाजिक सम्बन्ध ही हैं, चाहे उनको किसी भी रूप में क्यों न देखा जाय। वास्तव में समाजशास्त्रीय अध्ययन का आधार विभिन्न सामाजिक समूह, उनके आन्तरिक संगठन, संगठन को स्थिर रखने वाली अथवा परिवर्तित करने वाली प्रक्रियायें तथा समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्त कौमुदी, पृ. 417, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
2. द्विवेदी हज़ारी प्रसाद, जनपद ;त्रैमासिक पत्रिकाद्ध वर्ष–1, अंक–1 ;काशी : हिन्दू विश्वविद्यालय,अक्टूबर, 1952. पृ. 65.
3. अग्रवाल वासुदेव शरण, लोक का प्रत्यक्ष–दर्शन, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक ;प्रयागःहिन्दी साहित्य सम्मेलन, सन् 1974द्ध. पृ. 67.
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, सं. धीरेन्द्र वर्मा ;वाराणसी : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, दूसरा संस्करण, पृ. 689
5. वत्स महावीर, साठोरी कविता में सांस्कृतिक चेतना ;दिल्ली : संजय प्रकाशन, 1996द्ध, पृ. 2.
6. वर्मा रामचन्द्र, हिन्दी मानक कोश, पृ. 801, 802.
7. ब्राउन एफ.जे. एजुक ेशन सोशियालोजी ;न्यूयार्क : प ेन्टिस हॉल, 1949, पृ. 63
8. टायलर एडर्वड बी, प्रिमिटिव कल्चर ;लंदन : जे मयूर, 1929, पृ. 1.
9. मोनियर विलियम एम.ए. संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी ;आक्सफोर्ड : 1951द्ध, पृ. 1120.
10. द्विवेदी हज़ारी प्रसाद, अशोक के फूल ;इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1976, पृ. 75
11. हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, पृ. 70.
12. 'दिनकर' रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय ;दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 1956, पृ. 653.
13. मानक हिन्दी कोश ;चौथा खण्डद्ध, सं. रामचन्द्र वर्मा ;प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965. पृ.59
14. भाषा शब्द कोश ;संपाद्ध रामशंकर रसाल ;इलाहाबाद : रामनरायण लाल बेनी प्रसाद, 1974,पृ. 1477.
15. नालंदरा विशाल शब्दसागर, संपा, नवल जी ;देहली : फूलचन्द जैन, 1950, पृ. 1221, 1388.